पाठ–12
स्वाधीनता पर

मूल पाठ :–

भ्रमर का गुंजार

वह भी स्वाधीन,

पक्षियों का कलरव,

वह भी स्वाधीन

उदय–अस्त दिनकर का,

तिमिर हर क अन्तर से

तिमिर के उद्‌गम

और तम के हृदय से

निशानाथ का प्रकाश,

सब है स्वाधीन,.....

मेरे साथ मेरे विचार

मेरे जाति–

मेरे पददलित

मौन हैं–निद्रित हैं–

स्वप्न में भी पराधीन!

कितनी बड़ी दुर्बलता!

हम जानते है कि आजादी सबों को प्रिय होती है। स्वतंत्रता के बल पर ही हम नवीन कह कल्पना कर सकते हैं। प्रकृति अपनी स्वतंत्रता के लिए जानी जाती है और उसकी स्वतंत्रता हमारे लिए सीख है। हमें

भी प्रकृति की तरह स्वतंत्र रहना चाहिए। कवि प्रकृति की स्वतंत्रता से मनुष्य की स्वतंत्रता को जोड़कर देखते हैं। कवि प्रकृति से एक–एक उदाहरण लेते हैं और बताते हैं कि ये सारे के सारे स्वतंत्र हैं। कवि कहते हैं कि भौरे का गुंजार स्वतंत्र है। पक्षियों का चहचहाना स्वतंत्र है। सूर्य का निकलना और डूबना, प्रकाश के अन्दर से अंधकार का जन्म और पुनः अंधकार के हृदय से प्रकाश–पुंज के रूप में चंद्रमा का निकलना, ये सभी स्वतंत्र हैं। प्रकृति की स्वाधीनता मानव को प्रेरित करती है कि वह भी स्वाधीन जीवन–यापन करें।

स्वाधीन मानव ही अपने अन्दर के डर को समाप्त कर निर्भय बन सकता है। कवि स्वयं स्वीकार करते हैं कि मैं भी दूसरे के वश में हूँ। प्रकृति की तरह मैं भी स्वतंत्र नहीं हूँ। कवि भारत की शोषित, दलित जनता को देखकर दुखी हैं। वैसी जनता जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक रूप से पिछड़ी है, वह शोषित होने के बावजूद स्वतंत्र होने का प्रयास नहीं कर रही है। यह मानव के लिए सबसे बड़ी पराधीनता है। कवि इतनी बड़ी दुर्बलता पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं।

आता जब भूमिकम्प,
कौन रोक सकता है उसकी गति?
गरज उठते जब मेघ,
कौन रोक सकता है विपुल नाद?
उपल–दल
नष्ट जब करते हैं श्याम शस्य,
कौन–सी व्यवस्था वह
रोक रखती है उन्हें ?

कवि कहते हैं कि प्रकृति जो चाहती है वह करती है, उसे कोई नहीं रोक पाता है। भूकम्प की गति और मेघ के गरजन को भला कौन रोक सकता है। प्राकृतिक आपदाओं से विनाश की लीलाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं फिर उन्हें भला कौन रोक पाता है। ओला वृष्टि से हरियाली नष्ट हो जाती है। ऐसी कोई व्यवस्था

नहीं है जो इन प्राकृतिक घटनाओं को रोक सकती है। प्रकृति अपने स्वभाव से चलती है, किसी का भी नियंत्रण स्वीकार नहीं करती। प्रकृति पूर्णतः स्वतंत्र है, उसे कोई भी शासन व्यवस्था बांध नहीं पाई है।

समझा मैं,
भय ही व्यवस्था का जनक है,
निर्भय अपने को
और दुर्बल समाज को
कर के दिखाना है–
'स्वाधीन' का ही
एक और अर्थ निर्भय है।

कवि बताते हैं कि भय ही व्यवस्था का जनक है। यदि व्यवस्था बदलती है तो अपने आप को निर्भय करना होगा। मनुष्य को अपने अन्दर से डर निकालना होगा। कवि कहते हैं कि जो कमजोर वर्ग से हैं, आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े हैं, उन्हें स्वतंत्र करना होगा। तभी कमजोर समाज को बल मिल पाएगा। जब दुर्बल लोग आजाद होंगे, तब वे जागृत होकर अपने अधिकारों के लिए आगे आएंगे। कवि की घोषणा है कि 'स्वाधीन' का ही अर्थ 'निर्भय' अर्थात् निडर है।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला